

अद्वैत वेदान्त और विशिष्टाद्वैत वेदान्त में मोक्ष की अवधारणा : एक तुलनात्मक दार्शनिक अनुशीलन

प्रभा शंकर द्विवेदी

असि०प्रो०, काशी नरेश राजकीय स्ना०महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही

Email: prabhashankar1803@gmail.com

DOI: <https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i3.11>

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 10-09-2026

Accepted: 05-10-2026

Published: 19-10-2026

Corresponding Author:

प्रभा शंकर द्विवेदी

मुख्य शब्द: मोक्ष, अद्वैत वेदान्त, विशिष्टाद्वैत वेदान्त, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, ब्रह्मज्ञान, भक्तियोग।

OPEN ACCESS

सारांश:

भारतीय दर्शन की प्रमुख समस्याओं में मोक्ष की समस्या का केंद्रीय स्थान है। मोक्ष केवल दुःख की निवृत्ति अथवा जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति का नाम नहीं है, बल्कि यह आत्मा, परमसत्ता, ज्ञान, बंधन और मानव जीवन के परम प्रयोजन के संबंध में विकसित एक व्यापक दार्शनिक अवधारणा है। वेदान्त परंपरा में शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त तथा रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त मोक्ष की समस्या के दो महत्वपूर्ण प्रतिमान प्रस्तुत करते हैं। दोनों आचार्य उपनिषदों, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र को प्रामाणिक मानते हुए भी जीव और ब्रह्म के संबंध, जगत की वास्तविकता, बंधन के कारण तथा मुक्ति के स्वरूप की भिन्न व्याख्या करते हैं। शंकराचार्य के अनुसार आत्मा और ब्रह्म की मूलभूत अभिन्नता का यथार्थ ज्ञान अविद्या की निवृत्ति करता है; इसके विपरीत रामानुजाचार्य जीव की वास्तविकता और उसकी परमात्मा पर निर्भरता को स्वीकार करते हुए मोक्ष को भगवत्प्राप्ति, ब्रह्मानुभूति तथा परमात्मा की सेवा से संबद्ध करते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य दोनों अवधारणाओं का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट करना है कि उनके मतभेद केवल साधना-पद्धति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वास्तविकता और आत्मस्वरूप की भिन्न दार्शनिक मान्यताओं से उत्पन्न होते हैं। प्राथमिक ग्रंथों तथा प्रमाणित द्वितीयक साहित्य के आधार पर आलेख ज्ञान, भक्ति, जीव की व्यक्तिगत सत्ता, जगत की स्थिति और मोक्ष की अनुभूति का परीक्षण करता है। अंततः यह प्रतिपादित किया गया है कि दोनों वेदान्तीय प्रतिमान मुक्ति की समस्या को अलग-अलग दार्शनिक आधारों पर समझाते हुए मानव जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक और अस्तित्वगत प्रश्नों को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करते हैं।

1. प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में मोक्ष की अवधारणा मनुष्य के अस्तित्व, उसके दुःख, अज्ञान, कर्म और परम प्रयोजन से संबंधित मूलभूत प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास है। भारतीय दार्शनिक परंपराओं में मोक्ष को सामान्यतः बंधन से मुक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है, किंतु बंधन की प्रकृति, उसके कारण तथा उससे मुक्ति के स्वरूप के संबंध में एकरूपता नहीं है। कहीं अविद्या को बंधन का मूल कारण माना गया है, कहीं कर्म और उसके फल के प्रति आसक्ति को, तो कहीं परमसत्ता से अपने वास्तविक संबंध का विस्मरण बंधन की स्थिति उत्पन्न करता है। इस विविधता के कारण मोक्ष की समस्या केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं रह जाती, बल्कि वह तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, नैतिकता और आत्ममीमांसा से जुड़ा एक व्यापक दार्शनिक प्रश्न बन जाती है।

वेदान्त दर्शन में मोक्ष की समस्या का विशेष महत्त्व है। उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान और परम कल्याण से संबंधित अनेक प्रतिपादन मिलते हैं। भगवद्गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति के परस्पर संबंधों की विवेचना की गई है, जबकि ब्रह्मसूत्र इन उपनिषदपरक प्रतिपादनों को व्यवस्थित दार्शनिक आधार प्रदान करता है। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य ने इसी प्रस्थानत्रयी की व्याख्या करते हुए मोक्ष के दो प्रभावशाली सिद्धान्त विकसित किए। दोनों आचार्यों का उद्देश्य वेदान्तीय प्रामाणिकता के अंतर्गत ब्रह्म, जीव, जगत और मुक्ति के संबंध को स्पष्ट करना है, परंतु उनकी व्याख्याएँ मूलभूत प्रश्नों पर अलग-अलग निष्कर्ष प्रस्तुत करती हैं।¹

शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त ब्रह्म की परम अद्वितीयता तथा आत्मा-ब्रह्म की अभिन्नता पर बल देता है। उसके अनुसार अनुभवगत भेद को परम सत्य मानना अविद्या से संबंधित है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में ब्रह्म से पृथक् नहीं है; अतः मोक्ष किसी नवीन स्थिति की उत्पत्ति अथवा किसी अन्य सत्ता तक पहुँचने का नाम नहीं, बल्कि अपनी नित्यसिद्ध वास्तविकता का ज्ञान है।²

इसके विपरीत रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वेदान्त ब्रह्म की एकता स्वीकार करते हुए जीव और जगत की वास्तविकता को भी सुरक्षित रखता है। इसमें जीव परमात्मा से स्वतंत्र अथवा पूर्णतः अभिन्न सत्ता नहीं, बल्कि उसका आश्रित और उससे अविच्छिन्न रूप से संबद्ध तत्त्व है। इस दृष्टि में मोक्ष का अर्थ परमात्मा के साथ अपने वास्तविक संबंध की अनुभूति तथा उसके आनंदमय सान्निध्य की प्राप्ति है।³

इन दोनों विचारों की तुलना करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अद्वैत को केवल जगत-निषेध और विशिष्टाद्वैत को केवल भक्ति का दर्शन मान लेना उचित नहीं होगा। शंकराचार्य व्यवहारगत जीवन में धर्म, साधना, मनोनिग्रह और उपासना के महत्त्व को स्वीकार करते हैं; इसी प्रकार रामानुजाचार्य का भक्ति-सिद्धान्त केवल भावनात्मक समर्पण नहीं, बल्कि ब्रह्म के स्वरूप, जीव की सत्ता तथा परमात्मा के साथ उसके संबंध की विशिष्ट तत्त्वमीमांसा पर आधारित है। इसलिए दोनों मतों की सार्थक तुलना उनके मूल दार्शनिक आधारों को समझकर ही की जा सकती है।⁴

प्रस्तुत शोध आलेख में प्राथमिक रूप से शंकराचार्य के *ब्रह्मसूत्रभाष्य* और *उपदेशसाहस्री* तथा रामानुजाचार्य के *श्रीभाष्य*, *वेदार्थसंग्रह* और *भगवद्गीताभाष्य* के आधार पर विवेचना की गई है। साथ ही आधुनिक विद्वानों के व्याख्यात्मक अध्ययनों का उपयोग दोनों मतों के दार्शनिक तर्कों को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। अध्ययन की पद्धति तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक है। इसका उद्देश्य किसी एक मत को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करना मात्र नहीं, बल्कि उन मान्यताओं को समझना है जिनके आधार पर दोनों आचार्य मोक्ष की भिन्न अवधारणाओं तक पहुँचते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित शोध-प्रश्न निर्धारित किए गए हैं—

1. अद्वैत वेदान्त और विशिष्टाद्वैत वेदान्त में ब्रह्म, जीव तथा जगत की अवधारणाएँ मोक्ष के स्वरूप को किस प्रकार निर्धारित करती हैं?
2. दोनों आचार्यों के अनुसार बंधन का मूल कारण क्या है और उसकी निवृत्ति किस प्रकार संभव है?
3. मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञान और भक्ति की भूमिका क्या है? क्या दोनों साधन परस्पर विरोधी हैं अथवा उनकी भूमिकाएँ भिन्न दार्शनिक आधारों पर निर्धारित होती हैं?
4. मोक्ष की अवस्था में जीव की व्यक्तिगत सत्ता और परमात्मा के साथ उसके संबंध का स्वरूप क्या होता है?
5. दोनों मोक्ष-सिद्धान्तों की दार्शनिक सामर्थ्य, सीमाएँ तथा समकालीन जीवन में उनकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन किस प्रकार किया जा सकता है?

इन प्रश्नों के क्रमिक विश्लेषण से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के मोक्ष-विचारों का अंतर केवल मुक्ति के अनुभव का अंतर नहीं, बल्कि वास्तविकता की प्रकृति और मनुष्य के अंतिम आध्यात्मिक स्वरूप के विषय में दो भिन्न दार्शनिक दृष्टियों का परिणाम है।

2. मोक्ष की अवधारणा के दार्शनिक आधार : अद्वैत और विशिष्टाद्वैत

2.1 ब्रह्म, जीव और जगत : मोक्ष की तत्त्वमीमांसात्मक पृष्ठभूमि

मोक्ष के स्वरूप को समझने के लिए सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि दोनों आचार्यों के अनुसार वास्तविकता की संरचना क्या है। मुक्ति की अवधारणा अपने आप में स्वतंत्र रूप से निर्धारित नहीं होती; वह इस बात पर निर्भर करती है कि बंधन में पड़ा हुआ जीव कौन है, वह किस वास्तविकता से संबंधित है और उसकी वर्तमान स्थिति को बंधन क्यों कहा जाता है।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म परम और अद्वितीय वास्तविकता है। उपनिषदों के महावाक्यों की व्याख्या करते हुए वे आत्मा और ब्रह्म के बीच परम स्तर पर किसी वास्तविक भेद को स्वीकार नहीं करते। जीव की पृथक्ता, कर्तृत्व, भोक्तृत्व और सीमितता का अनुभव अविद्या के कारण उत्पन्न होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि सामान्य अनुभव को व्यवहार के स्तर पर पूर्णतः अस्वीकार कर दिया जाता है; बल्कि यह है कि अनुभवगत भेद को ब्रह्म की परम वास्तविकता के समान स्तर पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।⁵

यहाँ अद्वैत की मूल स्थापना यह है कि यदि आत्मा का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म से अभिन्न है, तो मुक्ति का अर्थ किसी बाह्य सत्ता से मिलन नहीं हो सकता। मिलन का विचार तभी सार्थक होगा जब आत्मा और ब्रह्म मूलतः दो स्वतंत्र सत्ताएँ हों। अद्वैत इस पूर्वधारणा को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार आत्मा की सीमितता वास्तविक स्वरूप की विशेषता नहीं, बल्कि अज्ञानजन्य आत्मपहचान का परिणाम है। व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार को अपना अंतिम स्वरूप मान लेता है; परिणामस्वरूप वह जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख तथा कर्मफल के अनुभवों से स्वयं को पूर्णतः संबद्ध समझता है। आत्मज्ञान इस मिथ्या तादात्म्य को दूर करता है।

इसके विपरीत रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत में ब्रह्म की एकता के साथ जीव और जगत की वास्तविकता भी स्वीकार की जाती है। ब्रह्म केवल निर्गुण, निरपेक्ष सत्ता नहीं, बल्कि अनंत कल्याणकारी गुणों से युक्त परमात्मा है। जीव चेतन तत्त्व है और जगत अचेतन तत्त्व; दोनों परमात्मा पर निर्भर होते हुए भी अपने विशिष्ट स्वरूप में वास्तविक हैं। रामानुजाचार्य इस संबंध को शरीर-शरीरी भाव के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। जैसे शरीर आत्मा पर आश्रित होता है और उसके द्वारा नियंत्रित होता है, वैसे ही समस्त चेतन तथा अचेतन सत्ता परमात्मा पर आश्रित है।⁶

इस प्रतिपादन में एकता का अर्थ भेद का संपूर्ण निषेध नहीं, बल्कि ऐसी एकता है जिसमें भिन्न तत्त्व अपने स्वतंत्र अस्तित्व के बजाय परमात्मा के साथ अविच्छिन्न संबंध में समझे जाते हैं। जीव ब्रह्म का शरीर अथवा विशिष्ट है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी व्यक्तिगत सत्ता सर्वथा असत्य है। इसीलिए विशिष्टाद्वैत में मोक्ष का प्रश्न जीव की वास्तविकता को नकारकर हल नहीं किया जा सकता।

दोनों दृष्टियों का अंतर यहाँ स्पष्ट हो जाता है। अद्वैत में मोक्ष का आधार जीव की पृथक्ता के मिथ्या बोध का निराकरण है, जबकि विशिष्टाद्वैत में जीव की परमात्मा से निर्भरता तथा उसके वास्तविक संबंध का ज्ञान मुक्ति की आधारभूमि है। पहली दृष्टि परम अभिन्नता को निर्णायक मानती है, दूसरी अभिन्न संबंध के भीतर विशिष्टता को सुरक्षित रखती है।

आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करने पर प्रश्न उठता है कि क्या परम एकता की स्थापना के लिए जीव की व्यक्तिगत सत्ता का निषेध आवश्यक है, अथवा एकता को वास्तविक भिन्नताओं के आश्रय के रूप में भी समझा जा सकता है? अद्वैत का उत्तर होगा कि परम सत्य में भेद की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करने से अद्वितीय ब्रह्म की स्थापना बाधित होती है। विशिष्टाद्वैत का प्रत्युत्तर यह है कि भिन्नताओं को असत्य माने बिना भी ब्रह्म की सर्वोच्चता और सर्वाधारता स्थापित की जा सकती है। इस प्रकार विवाद का वास्तविक केंद्र केवल जीव और ब्रह्म के बीच संबंध नहीं, बल्कि यह है कि परम वास्तविकता की एकता को किस अर्थ में समझा जाए।

2.2 बंधन की समस्या : अविद्या, कर्म और आत्मस्वरूप का विस्मरण

दूसरा शोध-प्रश्न बंधन के कारण तथा उसकी निवृत्ति से संबंधित है। मोक्ष की अवधारणा तभी स्पष्ट होती है जब यह समझा जाए कि जीव वास्तव में किससे मुक्त होना चाहता है।

अद्वैत वेदान्त में अविद्या बंधन की मूल समस्या है। अविद्या के कारण आत्मा अपने नित्य, शुद्ध और चैतन्य स्वरूप को नहीं पहचान पाती तथा शरीर-मन से संबंधित सीमाओं को अपना स्वरूप मान लेती है। इस गलत आत्मपहचान से कर्तृत्व और भोक्तृत्व का बोध उत्पन्न होता है। व्यक्ति कर्म करता है, कर्मफल की अपेक्षा रखता है, सुख-दुःख से प्रभावित होता है और जन्म-मरण के चक्र में प्रवृत्त रहता है। इस दृष्टि में कर्म-संसार बंधन की प्रक्रिया को बनाए रखता है, किंतु मूल समस्या आत्मस्वरूप का अज्ञान है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण दार्शनिक अंतर समझना आवश्यक है। शंकराचार्य के अनुसार आत्मा स्वयं अपने वास्तविक स्वरूप में कभी बंधनग्रस्त नहीं होती। बंधन का अनुभव अविद्याजन्य उपाधियों से संबंधित है। इसलिए मुक्ति आत्मा में किसी नए गुण का उत्पादन नहीं करती, बल्कि उस अज्ञान को दूर करती है जिसके कारण उसकी नित्य स्वतंत्रता अप्रकट रहती है।⁷

रामानुजाचार्य के यहाँ बंधन की व्याख्या भिन्न आधार पर विकसित होती है। जीव वास्तविक है, उसकी चेतना वास्तविक है और परमात्मा पर उसकी निर्भरता भी वास्तविक है। बंधन की स्थिति में जीव अपने स्वरूप, अपनी निर्भरता तथा परमात्मा के साथ अपने संबंध को यथार्थ रूप में नहीं पहचानता। कर्म, देह-संबंध और संसारगत आसक्ति उसकी चेतना तथा अनुभव को सीमित करते हैं। इसलिए मुक्ति केवल किसी मिथ्या भेद का बौद्धिक निषेध नहीं, बल्कि कर्मबंधनों से छुटकारा और परमात्मा के साथ अपने यथार्थ संबंध की अनुभूति है।

दोनों मतों में कर्म और अज्ञान का महत्व स्वीकार किया गया है, किंतु उनका दार्शनिक स्थान अलग है। अद्वैत में अज्ञान की निवृत्ति केंद्रीय है; विशिष्टाद्वैत में जीव की वास्तविक सत्ता, कर्मबंधन और परमात्मा पर निर्भरता को एक समन्वित संरचना में समझा जाता है।

आलोचनात्मक रूप से देखा जाए तो अद्वैत की सामर्थ्य यह है कि वह बंधन के मूल में आत्मपहचान की समस्या को रखकर मुक्ति को गहन आत्ममीमांसात्मक अर्थ प्रदान करता है। यदि मनुष्य स्वयं को केवल शरीर, सामाजिक स्थिति, उपलब्धियों अथवा मानसिक अवस्थाओं से पहचानता है, तो उसकी स्वतंत्रता बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर बनी रहती है। आत्मस्वरूप की विवेकपूर्ण पहचान इस सीमितता से मुक्ति का मार्ग खोल सकती है।

दूसरी ओर, विशिष्टाद्वैत यह प्रश्न उठाता है कि यदि बंधन को मुख्यतः अज्ञान की समस्या मान लिया जाए, तो जीव के वास्तविक कर्तृत्व, नैतिक उत्तरदायित्व और परमात्मा के साथ उसके संबंध की सकारात्मक व्याख्या कैसे की जाएगी? रामानुजाचार्य का दृष्टिकोण इन पक्षों को अधिक स्पष्ट स्थान देता है। जीव की व्यक्तिगत सत्ता को वास्तविक मानने से कर्म, नैतिक उत्तरदायित्व, भक्ति और अनुग्रह की भूमिका को व्यवस्थित रूप से समझा जा सकता है।

फिर भी विशिष्टाद्वैत के सामने यह प्रश्न बना रहता है कि यदि जीव स्वभावतः परमात्मा पर निर्भर है, तो वह अपने वास्तविक स्वरूप से विमुख क्यों होता है और इस स्थिति की व्याख्या किस प्रकार की जाए? इसी प्रकार अद्वैत के सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अविद्या की सत्ता और उसके आश्रय का निर्धारण किस प्रकार किया जाए, जबकि ब्रह्म को परम शुद्ध चैतन्य स्वीकार किया जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर दोनों परंपराओं में विस्तृत तर्क-वितर्क के माध्यम से दिया गया है। अतः बंधन की समस्या दोनों दर्शनों के लिए केवल व्यावहारिक दुःख का प्रश्न नहीं, बल्कि उनकी मूल तत्त्वमीमांसा की परीक्षा भी है।

2.3 ज्ञान और भक्ति : मोक्ष के साधनों का तुलनात्मक विवेचन

तीसरा शोध-प्रश्न मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञान और भक्ति की भूमिका से संबंधित है। सामान्यतः अद्वैत को ज्ञानमार्ग तथा विशिष्टाद्वैत को भक्तिमार्ग का प्रतिनिधि माना जाता है, लेकिन यह वर्गीकरण तभी उपयोगी है जब इसके पीछे निहित दार्शनिक आधारों को समझा जाए।

शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का ज्ञान है। यह ज्ञान केवल बौद्धिक सूचना या किसी दार्शनिक सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने का नाम नहीं है। यह आत्मस्वरूप की ऐसी यथार्थ पहचान है जो अज्ञानजन्य देहात्मबुद्धि को समाप्त कर देती है। इस ज्ञान की तैयारी के लिए साधक को विवेक, वैराग्य, मनोनिग्रह और अन्य आवश्यक योग्यताओं का विकास करना होता है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रक्रिया उपनिषदों के तात्पर्य को समझने, शंकाओं का निराकरण करने तथा आत्मबोध को दृढ़ करने में सहायक होती है।⁸

इस प्रकार अद्वैत में ज्ञान का अर्थ केवल सैद्धान्तिक निष्कर्ष नहीं, बल्कि अस्तित्वगत आत्मबोध है। भक्ति, उपासना और कर्मयोग साधक के अंतःकरण को शुद्ध करने तथा उसे ज्ञान के योग्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। किंतु परम मुक्ति का निर्णायक कारण आत्मा-ब्रह्म की अभिन्नता का ज्ञान है। यदि अज्ञान ही बंधन का मूल कारण है, तो उसका निवारण ज्ञान से ही संभव होगा।

रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत में ज्ञान का महत्व अस्वीकार नहीं किया जाता। जीव को परमात्मा के स्वरूप, अपने आश्रित अस्तित्व और दोनों के संबंध का यथार्थ ज्ञान होना आवश्यक है। तथापि यह ज्ञान परमात्मा से निरपेक्ष आत्मबोध के रूप में नहीं, बल्कि उसके प्रति उन्मुख चेतना के रूप में विकसित होता है। भक्ति केवल भावनात्मक अनुराग नहीं, बल्कि परमात्मा के स्वरूप का निरंतर ध्यान, प्रेमपूर्ण समर्पण और उसके प्रति स्थिर निष्ठा है। रामानुजाचार्य के यहाँ ज्ञान और भक्ति के बीच संबंध इस प्रकार है कि ज्ञान साधक को परमात्मा का यथार्थ बोध कराता है, जबकि भक्ति उस बोध को प्रेमपूर्ण, निरंतर और साधनामय अनुभव में परिणत करती है।⁹

भगवद्गीता की रामानुजाचार्याय व्याख्या में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग परस्पर संबद्ध हैं। कर्मयोग मनुष्य को कर्तव्यपालन और आसक्ति-त्याग की दिशा देता है; ज्ञानयोग आत्मा तथा परमात्मा के संबंध की समझ विकसित करता है; और भक्ति परमात्मा के प्रति निरंतर प्रेमपूर्ण अभिमुखता को अभिव्यक्त करती है। इस प्रक्रिया में परमात्मा की कृपा का भी महत्व है। मोक्ष को केवल आत्मप्रयास से अर्जित उपलब्धि मानने के बजाय परमात्मा के साथ संबंध की पूर्णता के रूप में समझा जाता है।

यहाँ एक आवश्यक सावधानी अपेक्षित है। रामानुजाचार्य की भक्ति को अद्वैत के ज्ञान के प्रतिपक्ष में खड़ा कर देना दार्शनिक रूप से अपर्याप्त होगा। दोनों परंपराएँ ज्ञान की आवश्यकता स्वीकार करती हैं, परंतु ज्ञान का अंतिम विषय और मुक्ति से उसका संबंध अलग-अलग ढंग से निर्धारित करती हैं। अद्वैत में ज्ञान का निर्णायक तात्पर्य आत्मा की ब्रह्म से अभिन्नता की अनुभूति है; विशिष्टाद्वैत में ज्ञान परमात्मा के स्वरूप और जीव की निर्भरता का बोध कराते हुए भक्ति तथा भगवत्प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करता है।

आलोचनात्मक दृष्टि से अद्वैत की विशेषता यह है कि वह मुक्ति को बाह्य उपलब्धि या भविष्य में प्राप्त होने वाली वस्तु के रूप में नहीं देखता। यदि आत्मा नित्य मुक्त स्वरूप है, तो मुक्ति की खोज अंततः उस अज्ञान का निराकरण है जो इस वास्तविकता को ढकता है। इसके विपरीत विशिष्टाद्वैत का बल इस बात पर है कि मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन केवल आत्मस्वरूप के बोध से पूर्ण नहीं होता; परमात्मा के प्रति प्रेम, समर्पण और संबंधपरक अनुभूति भी उसके परम प्रयोजन के अंग हैं।

इन दोनों दृष्टियों के बीच दार्शनिक तनाव इस प्रश्न पर केंद्रित है कि क्या परम मुक्ति में आत्मा की स्वतंत्र पहचान का निषेध आवश्यक है, या जीव की विशिष्टता और परमात्मा के साथ उसका शाश्वत संबंध ही मुक्ति की पूर्णता है। अद्वैत पहले विकल्प का समर्थन करता है, जबकि विशिष्टाद्वैत दूसरे को। इस अंतर को समझे बिना ज्ञान और भक्ति के विषय में कोई सार्थक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

2.4 मोक्ष की अवस्था में जीव की सत्ता और परमात्मा से संबंध

चौथा शोध-प्रश्न यह है कि मोक्ष की अवस्था में जीव की व्यक्तिगत सत्ता का क्या स्वरूप रहता है। यही वह बिंदु है जहाँ दोनों आचार्यों के बीच सबसे महत्वपूर्ण तात्त्विक अंतर स्पष्ट होता है।

अद्वैत वेदान्त में आत्मा-ब्रह्म की अभिन्नता मोक्ष की केंद्रीय विशेषता है। मुक्ति के पश्चात् आत्मा किसी सीमित, स्वतंत्र सत्ता के रूप में ब्रह्म के सामने उपस्थित नहीं होती, क्योंकि ऐसी पृथक्ता परम स्तर पर स्वीकार नहीं की जाती। इसका आशय यह नहीं कि ज्ञान के पश्चात् कोई नष्ट हो जाने वाली वस्तु ब्रह्म में मिल जाती है। अद्वैत की दृष्टि में आत्मा का ब्रह्म से अलग होना ही मूलतः अविद्याजन्य अध्यास है। ज्ञान इस भेद को परम सत्य का दर्जा देने वाली भ्रांति को समाप्त करता है। इसलिए मोक्ष को किसी वस्तु के विनाश की अपेक्षा वास्तविक स्वरूप के अनावरण के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है।¹⁰

इस दृष्टिकोण में मुक्ति का अर्थ परम स्वतंत्रता है, क्योंकि आत्मा की पहचान शरीर, मन, कर्मफल और सीमित व्यक्तित्व से नहीं की जाती। ब्रह्म की अद्वितीयता में स्थापित आत्मबोध ही मोक्ष है। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि यदि व्यक्तिगत भेद का परम स्तर पर निषेध हो जाता है, तो मुक्त अवस्था की अनुभूति का वर्णन किस प्रकार किया जाए। अद्वैत का उत्तर यह है कि भाषा और विचार की सामान्य श्रेणियाँ स्वयं भेद-आधारित अनुभव के क्षेत्र में कार्य करती हैं; इसलिए परम अद्वैत की अनुभूति को सामान्य विषय-वस्तु संबंध की तरह व्यक्त करना कठिन है।

रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत में मोक्ष की अवस्था में जीव की व्यक्तिगत सत्ता बनी रहती है। जीव परमात्मा से स्वतंत्र नहीं होता, लेकिन उसकी विशिष्ट पहचान नष्ट भी नहीं होती। मोक्ष में कर्मबंधन और अज्ञानजन्य सीमाएँ दूर हो जाती हैं, जिससे जीव अपने वास्तविक स्वरूप तथा परमात्मा के साथ अपने शाश्वत संबंध का पूर्ण अनुभव कर सकता है। यह अनुभव भगवत्सान्निध्य, आनंद और सेवा से संबंधित है।¹¹

विशिष्टाद्वैत में परमात्मा और जीव का संबंध न तो पूर्ण पृथक्ता का है और न ही पूर्ण अभिन्नता का। जीव परमात्मा का आश्रित तत्त्व है; उसकी सत्ता परमात्मा पर निर्भर है। इस निर्भरता के कारण ही जीव की मुक्ति परमात्मा से संबंध-विच्छेद नहीं, बल्कि उस संबंध की पूर्णता है। यहाँ व्यक्तिगत सत्ता का बने रहना बंधन का कारण नहीं माना जाता; बंधन का कारण उस सत्ता का सीमित, कर्मबद्ध और अज्ञानग्रस्त होना है।

दोनों विचारों की तुलना करने पर एक मौलिक अंतर सामने आता है। अद्वैत में मुक्ति का अर्थ उस परम सत्य को जानना है जिसमें स्वतंत्र द्वैत का स्थान नहीं है। विशिष्टाद्वैत में मुक्ति का अर्थ उस संबंध की पूर्ण अनुभूति है जिसमें जीव की विशिष्टता और परमात्मा की सर्वोच्चता एक साथ सुरक्षित रहती हैं। आलोचनात्मक दृष्टि से अद्वैत का पक्ष यह है कि यदि आत्मा की वास्तविकता को सभी सीमित उपाधियों से परे समझा जाए, तो मुक्ति किसी सीमित व्यक्तित्व की स्थायी आवश्यकताओं पर निर्भर नहीं रहती। यह दृष्टि आत्मस्वरूप की सार्वभौमिकता और परम स्वतंत्रता का गहन प्रतिपादन करती है। इसके विपरीत विशिष्टाद्वैत का पक्ष यह है कि यदि जीव की व्यक्तिगत पहचान पूर्णतः समाप्त हो जाए, तो प्रेम, भक्ति, संबंध और सेवा जैसी आध्यात्मिक अवधारणाओं का मुक्त अवस्था में क्या अर्थ रहेगा? जीव की विशिष्टता को सुरक्षित रखकर रामानुजाचार्य इन अवधारणाओं को मोक्ष की सकारात्मक विशेषताओं के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

हालाँकि यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अद्वैत को व्यक्तित्व-विरोधी दर्शन कहना उचित नहीं है। वह व्यवहारगत स्तर पर व्यक्ति, नैतिकता और साधना की उपयोगिता स्वीकार करता है; उसका निषेध परम सत्य के स्तर पर स्वतंत्र द्वैत की स्थापना के संबंध में है। इसी प्रकार विशिष्टाद्वैत में जीव की व्यक्तिगत सत्ता स्वीकार करने का अर्थ उसे परमात्मा के समान स्वतंत्र अथवा सर्वशक्तिमान मानना नहीं है। जीव की विशिष्टता सदैव उसकी आश्रित प्रकृति के साथ संबद्ध रहती है।

इस प्रकार मोक्ष में जीव की सत्ता के प्रश्न पर दोनों दर्शन अलग-अलग समाधान प्रस्तुत करते हैं। एक में मुक्ति भेदबोध की परम निवृत्ति है, दूसरे में भेद के भीतर विद्यमान आश्रित संबंध की पूर्णता।

2.5 दोनों मोक्ष-सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

पाँचवें शोध-प्रश्न के अंतर्गत दोनों सिद्धान्तों की दार्शनिक सामर्थ्य, सीमाओं और समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन आवश्यक है। तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य केवल समानताओं और असमानताओं की सूची बनाना नहीं, बल्कि यह देखना है कि प्रत्येक दर्शन किस समस्या का समाधान करता है और उस समाधान के लिए उसे किन मान्यताओं को स्वीकार करना पड़ता है।

अद्वैत वेदान्त की पहली प्रमुख विशेषता यह है कि वह मोक्ष को आत्मस्वरूप के ज्ञान से संबद्ध करते हुए मनुष्य की स्वतंत्रता का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। व्यक्ति प्रायः अपनी पहचान शरीर, संपत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा, सफलता, असफलता और मानसिक अवस्थाओं से निर्मित करता है। ऐसी पहचान बाहरी परिस्थितियों के बदलते ही अस्थिर हो जाती है। अद्वैत की दृष्टि इस सीमित आत्मपहचान की समीक्षा करती है और यह प्रश्न उठाती है कि क्या

मनुष्य का वास्तविक स्वरूप उन सभी अवस्थाओं से परे किसी अधिक मूलभूत चैतन्य से संबंधित है। इस अर्थ में अद्वैत आत्मचिंतन, वैराग्य और मानसिक स्वतंत्रता के लिए महत्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

किन्तु अद्वैत की व्याख्या के सामने अविद्या की समस्या अत्यंत जटिल है। यदि ब्रह्म परम सत्य है और उससे भिन्न किसी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता, तो अविद्या की स्थिति, आश्रय और निवृत्ति का स्वरूप स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार अनुभवगत जगत की स्थिति को केवल अविद्या के संदर्भ में समझने पर यह प्रश्न उठता है कि व्यवहारगत वास्तविकता, नैतिक उत्तरदायित्व और सामाजिक जीवन की महत्ता को किस प्रकार सुरक्षित रखा जाए। अद्वैत परंपरा इन प्रश्नों के उत्तर व्यवहारिक और पारमार्थिक स्तरों के भेद से देने का प्रयास करती है, लेकिन इस भेद को समझना दार्शनिक रूप से आवश्यक है।¹²

विशिष्टाद्वैत की सामर्थ्य यह है कि वह परमात्मा की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए जीव तथा जगत की वास्तविकता को भी बनाए रखता है। इससे नैतिक उत्तरदायित्व, कर्तव्य, भक्ति, प्रेम और सेवा को आध्यात्मिक जीवन के अंग के रूप में समझना संभव होता है। जीव की व्यक्तिगत पहचान को बनाए रखने के कारण मोक्ष को केवल अज्ञान की निवृत्ति नहीं, बल्कि सकारात्मक संबंधपरक अनुभूति के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस दृष्टि में परम मुक्ति मनुष्य की उस आकांक्षा का उत्तर है जिसमें वह स्वतंत्रता के साथ-साथ संबंध, अर्थ और परम आश्रय की भी खोज करता है।

फिर भी विशिष्टाद्वैत के समक्ष कुछ प्रश्न उपस्थित होते हैं। यदि जीव और जगत परमात्मा पर पूर्णतः निर्भर हैं, तो उनकी विशिष्टता और परमात्मा की अद्वितीयता के बीच संबंध को किस प्रकार समझा जाए? इसी तरह कर्म, व्यक्तिगत प्रयास, भक्ति और परमात्मा की कृपा के बीच संतुलन की व्याख्या आवश्यक है। इन प्रश्नों का समाधान शरीर-शरीरी भाव तथा जीव की आश्रित सत्ता के सिद्धान्त के माध्यम से किया जाता है; फिर भी इन अवधारणाओं को समझने के लिए उनकी विशिष्ट तत्त्वमीमांसा को स्वीकार करना पड़ता है।

यहाँ दोनों दर्शनों की तुलना किसी एक को सरलता से श्रेष्ठ घोषित करने की अनुमति नहीं देती। यदि आत्मा की परम स्वतंत्रता, आत्मपहचान की समीक्षा और अज्ञान की निवृत्ति को प्रमुखता दी जाए, तो अद्वैत की व्याख्या अधिक केंद्रीय प्रतीत होती है। यदि जीव की व्यक्तिगत सत्ता, परमात्मा के साथ संबंध और भक्ति की सकारात्मक भूमिका को प्राथमिकता दी जाए, तो विशिष्टाद्वैत अधिक संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस अंतर का कारण केवल साधना के प्रति दृष्टिकोण नहीं, बल्कि वास्तविकता के स्वरूप के विषय में दोनों की अलग मान्यताएँ हैं।

समकालीन संदर्भ में इन दोनों सिद्धान्तों की प्रासंगिकता को भी इसी सावधानी से समझना चाहिए। अद्वैत मनुष्य को अपनी सीमित पहचान, अहंकार, आसक्ति और बाहरी उपलब्धियों पर अत्यधिक निर्भरता की समीक्षा करने के लिए प्रेरित करता है। इससे आत्मचिंतन और मानसिक संतुलन के लिए दार्शनिक आधार प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर विशिष्टाद्वैत मनुष्य के जीवन में संबंधों, कृतज्ञता, सेवा, समर्पण और उत्तरदायित्व की भूमिका को रेखांकित करता है। वह यह समझने में सहायता करता है कि आध्यात्मिक जीवन को केवल व्यक्तिगत आत्मोन्नति तक सीमित नहीं किया जा सकता।

हालाँकि आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय अथवा नैतिक समस्याओं का समाधान केवल किसी पारंपरिक मोक्ष-सिद्धान्त को अपनाने से स्वतः नहीं हो जाता। इन सिद्धान्तों की समकालीन उपयोगिता उनके आलोचनात्मक और संदर्भानुकूल पुनर्पाठ पर निर्भर करती है। अद्वैत की आत्ममीमांसा को सामाजिक उत्तरदायित्व से काटकर देखना उचित नहीं होगा; इसी प्रकार विशिष्टाद्वैत की भक्ति को केवल निजी धार्मिक भावना तक सीमित करना भी उसके व्यापक नैतिक आशय को संकुचित करेगा।

अंततः दोनों मोक्ष-सिद्धान्त मानव जीवन के परम प्रयोजन को समझने के दो भिन्न किंतु गंभीर प्रयास हैं। अद्वैत का केंद्रीय प्रश्न है कि मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर अज्ञानजन्य सीमाओं से किस प्रकार मुक्त हो सकता है। विशिष्टाद्वैत का केंद्रीय प्रश्न है कि जीव अपनी वास्तविक सत्ता और परमात्मा के साथ अपने संबंध की पूर्ण अनुभूति कैसे प्राप्त कर सकता है। इन प्रश्नों के उत्तर अलग हैं, किंतु दोनों का लक्ष्य जीवन की सीमितता, बंधन और अपूर्णता से परे परम कल्याण की खोज है।

3. निष्कर्ष

प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अद्वैत वेदान्त और विशिष्टाद्वैत वेदान्त में मोक्ष की अवधारणा का अंतर उनके मूल तत्त्वमीमांसात्मक आधारों से उत्पन्न होता है। शंकराचार्य आत्मा और ब्रह्म की परम अभिन्नता को स्वीकार करते हुए मोक्ष को अविद्या की निवृत्ति तथा आत्मस्वरूप के यथार्थ ज्ञान के रूप में प्रतिपादित करते हैं। रामानुजाचार्य ब्रह्म की सर्वोच्चता के साथ जीव और जगत की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए मोक्ष को कर्मबंधन से मुक्ति, भगवत्प्राप्ति तथा परमात्मा के साथ आनंदमय संबंध की पूर्णता के रूप में समझाते हैं।

पहले शोध-प्रश्न के संदर्भ में यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ब्रह्म, जीव और जगत के संबंध में दोनों आचार्यों की मान्यताएँ उनके मोक्ष-सिद्धान्त को निर्धारित करती हैं। अद्वैत में परम अभिन्नता निर्णायक है, जबकि विशिष्टाद्वैत में एकता के भीतर विशिष्टता और आश्रित संबंध को महत्त्व दिया जाता है।

दूसरे शोध-प्रश्न के उत्तर में यह स्पष्ट हुआ कि अद्वैत अविद्या को बंधन की केंद्रीय समस्या मानता है, जबकि विशिष्टाद्वैत जीव की अज्ञानग्रस्त, कर्मबद्ध और परमात्मा के प्रति अपने वास्तविक संबंध से विमुख स्थिति पर बल देता है। दोनों में अज्ञान तथा कर्म की भूमिका स्वीकार की जाती है, किंतु उनकी दार्शनिक व्याख्या अलग-अलग है।

तीसरे शोध-प्रश्न के अनुसार ज्ञान और भक्ति को केवल दो विरोधी साधनों के रूप में देखना उचित नहीं है। अद्वैत में आत्मा-ब्रह्म की अभिन्नता का ज्ञान निर्णायक है, जबकि विशिष्टाद्वैत में परमात्मा के यथार्थ ज्ञान से संबद्ध भक्ति और समर्पण को प्रमुखता प्राप्त होती है। दोनों परंपराएँ साधना, अनुशासन और आत्मपरिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार करती हैं।

चौथे शोध-प्रश्न के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण अंतर जीव की व्यक्तिगत सत्ता को लेकर सामने आता है। अद्वैत में मुक्ति परम स्तर पर स्वतंत्र भेदबोध की निवृत्ति है; विशिष्टाद्वैत में जीव की विशिष्ट सत्ता बनी रहती है और वह परमात्मा के साथ अपने शाश्वत संबंध का अनुभव करता है।

पाँचवें शोध-प्रश्न के आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों सिद्धान्तों की सामर्थ्य और सीमाएँ उनकी मूल मान्यताओं के संदर्भ में समझी जानी चाहिए। अद्वैत आत्मस्वरूप, अज्ञान और स्वतंत्रता की समस्या का गहन विश्लेषण करता है; विशिष्टाद्वैत जीव की वास्तविकता, संबंधपरकता, भक्ति और परमात्मा पर निर्भरता को दार्शनिक महत्त्व प्रदान करता है। समकालीन जीवन में पहला दृष्टिकोण सीमित आत्मपहचान और आसक्ति की समीक्षा के लिए, जबकि दूसरा संबंध, कृतज्ञता, सेवा और उत्तरदायित्व के विवेचन के लिए उपयोगी हो सकता है।

अतः यह शोध आलेख इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मोक्ष की अवधारणा को केवल एक ही दार्शनिक प्रतिमान में सीमित नहीं किया जा सकता। अद्वैत और विशिष्टाद्वैत मुक्ति की समस्या के दो विशिष्ट समाधान प्रस्तुत करते हैं। उनके बीच का अंतर भारतीय दर्शन की आंतरिक बहुलता और तर्कपूर्ण विमर्श की समृद्धि को प्रकट करता है। दोनों का गंभीर अध्ययन न केवल वेदान्त की मूल समस्याओं को समझने में सहायक है, बल्कि आत्मस्वरूप, परमसत्ता, स्वतंत्रता और मानव जीवन के अंतिम प्रयोजन पर व्यापक दार्शनिक चिंतन की संभावनाएँ भी खोलता है।

पाद -टिप्पणी

[1] वेदान्त की प्रस्थानत्रयी तथा उसके भाष्यात्मक विकास के लिए देखें: बादरायण के *ब्रह्मसूत्र*, शंकराचार्य का *ब्रह्मसूत्रभाष्य* और रामानुजाचार्य का *श्रीभाष्य*। ब्रह्मसूत्र के विभिन्न भाष्य उपनिषदों के तात्पर्य की अलग-अलग दार्शनिक व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं।

[2] अद्वैत वेदान्त में आत्मज्ञान और मुक्ति के संबंध को समझने के लिए शंकराचार्य की *उपदेशसाहस्री* तथा *ब्रह्मसूत्रभाष्य* के ब्रह्मज्ञान-संबंधी विवेचन उपयोगी हैं।

[3] रामानुजाचार्य के जीव-ब्रह्म संबंध और मोक्ष के सिद्धान्त के लिए *श्रीभाष्य* तथा *वेदार्थसंग्रह* प्राथमिक स्रोत हैं।

[4] शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करते समय उनके मूल ग्रंथों को प्राथमिकता देना आवश्यक है। इस संदर्भ में Michael Comans का *The Method of Early Advaita Vedānta* और S. S. Raghavachar का *Sri Bhashya on the Philosophy of the Brahma-sutra* उपयोगी द्वितीयक अध्ययन हैं।

- [5] अद्वैत में ब्रह्म की परम वास्तविकता, अध्यास और आत्मा-ब्रह्म की अभिन्नता के लिए शंकराचार्य का *ब्रह्मसूत्रभाष्य* देखें। विस्तृत आधुनिक व्याख्या के लिए Comans (2000) भी उपयोगी है।
- [6] रामानुजाचार्य का शरीर-शरीरी संबंध, ब्रह्म के कल्याणकारी गुण और जीव की आश्रित सत्ता का प्रतिपादन *श्रीभाष्य* तथा *वेदार्थसंग्रह* में मिलता है। इस संबंध में Raghavachar (1986) का अध्ययन विशेष रूप से उपयोगी है।
- [7] अद्वैत में अविद्या और आत्मज्ञान की समस्या तथा उससे संबंधित दार्शनिक प्रश्नों के लिए शंकराचार्य का *ब्रह्मसूत्रभाष्य* और *उपदेशसाहस्री* देखें।
- [8] श्रवण, मनन, निदिध्यासन और आत्मज्ञान की प्रक्रिया के लिए शंकराचार्य की *उपदेशसाहस्री* प्राथमिक स्रोत है। इसके दार्शनिक संदर्भ को समझने के लिए Comans (2000) का अध्ययन सहायक है।
- [9] रामानुजाचार्य के ज्ञान, भक्ति और भगवत्प्राप्ति संबंधी विचारों के लिए *भगवद्गीताभाष्य* तथा *वेदार्थसंग्रह* देखें।
- [10] अद्वैत में मुक्ति की प्रकृति और आत्मा-ब्रह्म की अभिन्नता के लिए शंकराचार्य का *ब्रह्मसूत्रभाष्य* प्राथमिक स्रोत है। आधुनिक दार्शनिक विवेचन के लिए Comans (2000) का उपयोग किया जा सकता है।
- [11] विशिष्टाद्वैत में मोक्ष के स्वरूप, जीव की व्यक्तिगत सत्ता तथा परमात्मा के अनुभव के लिए रामानुजाचार्य का *श्रीभाष्य* और *भगवद्गीताभाष्य* देखें।
- [12] अद्वैत और विशिष्टाद्वैत के दार्शनिक आधारों तथा उनके परस्पर मतभेदों की व्याख्या के लिए Raghavachar (1986) का तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी है।

संदर्भ-सूची

- [1] बादरायण. (विभिन्न संस्करण). *ब्रह्मसूत्र*. (प्रयुक्त संस्करण के अनुवादक, संपादक एवं प्रकाशन-विवरण के अनुसार विवरण पूर्ण किया जाना चाहिए।)
- [2] शंकराचार्य. (1983). *Brahma Sūtra Bhāṣya* (S. Gambhirananda, Trans.). Advaita Ashrama.
- [3] शंकराचार्य. (2006). *Śaṅkara's Upadeśasāhasrī: A thousand teachings* (S. Mayeda, Trans. & Ed.). Motilal Banarsidass.
- [4] रामानुजाचार्य. (1968). *Vedānthasāṅgraha* (S. S. Raghavachar, Trans. & Ed.). Sri Ramakrishna Ashrama.
- [5] रामानुजाचार्य. (1899). *The Vedānta-sūtras with the Śrī-bhāṣya of Rāmānuja* (M. Rangacharya & M. B. Varadaraja Aiyangar, Trans.). Government Press.
- [6] Comans, M. (2000). *The method of early Advaita Vedānta: A study of Gauḍapāda, Śaṅkara, Sureśvara, and Padmapāda*. Motilal Banarsidass.
- [7] Raghavachar, S. S. (1986). *Sri Bhashya on the philosophy of the Brahma-sutra*. Sri Lakshmi Hayagreeva Seva Trust.

Cite the Article:

द्विवेदी, प्रभा शंकर. (2026). अद्वैत वेदान्त और विशिष्टाद्वैत वेदान्त में मोक्ष की अवधारणा : एक तुलनात्मक दार्शनिक अनुशीलन. The Research Dialogue, 5(3) 99-107, ISSN: 2583-438X (Online), Volume 05, Issue 03, October-2026.,
DOI: - <https://doi.org/10.64880/theresearchdialogue.v5i3.11>